International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 85-87

राजस्थानी हस्तशिल्पः मीनाकारी के विशेष संदर्भ में

भारत आर्य

इतिहास विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, भारत

प्रस्तावना

भारत में आदिकाल से हस्तशिल्प आध्यात्मिक एवं रचनात्मक सामर्थ्य की अभिव्यक्ति रही है। ऋग्वेद से लेकर समस्त परवर्ती साहित्य में, विकास के प्रत्येक चरण में, देश के प्रत्येक अंचल में हस्तशिल्प का उल्लेख रहा है। हस्तशिल्प के उत्पाद एक ओर समाज की दैनिक जरूरतों को पूरा करने वाले होते हैं और दूसरी ओर से चित्त को सुखमय अवस्था में ला देते हैं। परिवार एवं समारोहों में शिल्प उत्पाद विशिष्ट स्थान पाते हैं। इसीलिए शिल्प उत्पादों की गणना श्रेष्ठ उत्पादों की कोटि में की जाती है। हस्तशिल्प उत्पाद वे हैं जो शिल्पकारों की रचनाधर्मिता से न्यूनतम उपकरणों का प्रयोग करते हुए स्थानीय कच्चे माल से हस्तनिर्मित होते हैं। हस्तशिल्प का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। हस्तशिल्प उत्पादों के माध्यम से शिल्पकार अपने कौशल और दक्षता का भी प्रदर्शन करते हैं।

बनारस, चन्देरी, कांजीवरम, पोचमपल्ली की साड़ियां; मैसूर उड़ीसा, असम आदि स्थानों के विविध सिल्क उत्पाद; कश्मीरी शाल, मधुबनी छपाई, जोधपुर की बंधेज साड़ियां, मुरादाबाद के बर्तन; सहारनपुर की लकड़ी पर नक्काशीदार फर्नीचर; फिरोजाबाद की कांच की चूड़ियां, मथुरा की मूर्तियां आदि हस्तशिल्प के ऐसे उदाहरण हैं जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी समाज में अपनी उपादेयता के साक्षी हैं। ढाका की मलमल तो विश्वविख्यात रही है। उसकी बारीकी इस स्तर की रही है कि उसे सात तह करके पहनने पर भी पारदर्शिता बनी रहती थी।

राजस्थान की हस्तकलाओं से साक्षात्कार हुए बिना राजस्थान दर्शन अधूरा हैं। राजस्थान की हस्तशिल्पकला ने सम्पूर्ण विश्व को सम्मोहित कर दिया हैं। प्राचीनकाल से ही राजस्थानी हस्तशिल्प के उत्कृष्ट नमूने यहाँ के हस्तशिल्पियों की कलात्मक अभिरूचि को प्रदर्शित कर रहे हैं। मानव की युगों–युगों से चली आ रही धैर्य, लगन व परिश्रम भरी रचनात्मक प्रक्रिया का सुखद परिणाम हैं 'हस्तशिल्प'। हाथों द्वारा कलात्मक एवं आकर्षक वस्तुऐं बनाना ही हस्तकला या हस्तशिल्प है।[1] राजस्थान की विभिन्न हस्तकलाऐं यहां की समद्ध संस्कृति की पहचान है। राजस्थान की हस्तकलाओं का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि पाषाणयुगीन मानव का इतिहास [2] अतः सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव ने अपने उपयोग के लिए विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया था। हाथों की कला से निर्मित ऐसी वस्तुओं में कलात्मकता देखते ही बनती थी। प्राचीन काल से ही राजस्थानी हस्तशिल्प के उत्कृष्ट नमूने प्रदेश के लोगों की कलात्मक अभिरूचि को प्रदर्शित करते रहे है। यहां की हस्तकलाओं का इतिहास तभी से जाना जा सकता है जब से मनुष्य ने पत्थरों के औजार बनाना प्रारम्भ किये। राजस्थान की विभिन्न सभ्यताओं की खुदाई के अवशेषों में हस्तकला उत्पाद प्रायः सभी स्थानों पर मिले है। कालीबंगा की खुदाई से सिन्धु घाटी सभ्यता के जो अवशेष प्रदेश में मिले है, उनसे पता चलता है कि कभी राजस्थान हस्तकला उद्योगों का प्रमुख केन्द्र रहा है। कालीबंगा के उत्खनन कार्य से मिली वस्तुओं में मिट्टी के कलात्मक बर्तन मूर्तिया, पत्थर के औजार आदि विशेष रूप से प्राप्त हुए है। इनसे सहज ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि राजस्थान हस्तकलाओं के लिहाज से आरम्भ से ही खासा समृद्ध रहा है।[3]

'हस्तशिल्प' इस शब्द के उच्चारण मात्र से यह भान हो जाता हैं कि यह शब्द उन शिल्प कलाओं को इंगित करता हैं, जिनके निर्माण में हाथ के कौशल की प्राथमिक भूमिका होती हैं।

राजस्थान अनेकों शताब्दियों से आभूषण निर्माण में सिरमौर रहा। रंगीन पत्थरों व हीरे की कटाई यहाँ का प्रमुख शिल्प व व्यवसाय है। सोने चाँदी के कलात्मक आभूषण बनाने के लिए जयपुर, जोधपुर, अजमेर व उदयपुर के स्वर्णकार विश्व प्रसिद्ध हैं। बीकानेर, जयपुर, नाथद्वारा तथा प्रतापगढ़ आदि में मीनाकारी का कार्य बहुत सुन्दर व मनमोहक होता है। यह काम मीनाकार या सुनार भी करते है। मीनाकारी मध्ययुगी हस्तकला हैं जो फारस तथा लाहौर होती हुई जयपुर आई। मीनाकारी की अनेक किस्में प्रचलित है। जयपुरी मीनाकारी तो अपनी एक खास पहचान रखता है। राजस्थान की हस्तकलाओं का इतिहास यहां की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से जुड़ा है परन्तु अंग्रेजो के समय में हस्तकलाओं का विकास समुचित रूप से इस लिए नहीं हो सका था कि उन्होनें हस्तकलाकारों को पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं दिया। यही नहीं स्वतन्त्रता के पश्चात बहुत से मुस्लिम हस्तकलाकारों द्वारा भारत छोड़कर पाकिस्तान जाने के कारण हस्तकलाओं को खासी क्षति पहुंची। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात लघु उद्योग निगम, हैण्डीक्राटस बोर्ड आदि की स्थापना के साथ ही समय–समय पर लगने वाले हस्तशिल्प उत्पाद मेलों से जरूर हस्तकलाओं प्रोत्साहन एवं उत्पाद की बाजार मिला। अतः व्यक्तिगत व्यापारिक साधनों द्वारा हस्तोद्योगों की वस्तुओं का भारी मात्रा में निर्यात होने लगा है विदेशी राजस्थान की कलाओं के अत्यन्त प्रशंसक है। उन्होनें यहां की कलाओं पर गहन अध्ययन और शोधकार्य किये है, जो पुस्तकों के माध्यम से प्रकाश में आ चुके है। [4]

अतः राजस्थान हस्तकलाओं का गढ़ माना जाता है [5] गत एक शताब्दी में जयपुर की मीनाकारी ने जहां विश्वस्तर पर अपनी पहचान बनायी है वहीं जयपुर की कुंदन कला भी खासी लोकप्रिय हुई है। जयपुर के रत्नाभूषण भी विशेष रूप से प्रसिद्ध है। दैनिक उपयोग में आने वाली विभिन्न अन्य वस्तुओं के निर्माण के साथ ही विलासिता से जुड़ी वस्तुओं के उत्पादन में पिछले पांच दशकों में राजस्थान में जो कार्य हुआ है, उससे यहां के पर्यटन व्यवसाय में भी खासी बढ़ोतरी हुई है अतः राज्य में हस्तशिल्प निर्यात विदेश मुद्रा अर्जन करने वाला सर्वाधिक अच्छा स्त्रोत है।[6] आक्सफार्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार हस्तशिल्प एक ऐसा पेशा या कला है जिसके लिए हाथो के कौशल की जरूरत होती है।[7]

मीनाकारी

सोने–चांदी व अन्य आभूषणों एवं कलात्मक वस्तुओं पर मीना चढ़ाने की कला मीनाकारी कहलाती है मीना के रंगो की चमक

सामान्य रंगो से कही अधिक तीव्र होती है। इस विधि से अलंकारिक कार्य एवं चित्र भी बनाये जाते है जो एनैमल चित्रकारी के नाम से प्रसिद्ध है।[8] मीना की कला का जन्म एशिया में हुआ। मीना का काम सर्वप्रथम फाइनीशिया में किया जाता था तदन्तर चौसरों के राजस्व काल में यह कारीगरी फारस में लाई गई। उसके पश्चात मुगलो द्वारा यह कारीगरी लाहौर में लाई गयी लाहौर में यह काम सिक्खों द्वारा किया जाता था। अतः मीना की यह कारीगरी भारत में विदेश से आई और राजस्थान के राजाओं ने सबसे पहले उसको प्रोत्साहित किया। राजस्थान में युद्धो की अस्थिरता के कारण प्राचीन समय में मुद्रा रखने के अतिरिक्त स्थाई निर्वाह के लिए स्वर्ण संचय करना अधिक सुरक्षापूर्ण और उपयोगी समझा जाता था तथा आभूषणों को मीनाकारी से अलंकृत किया जाता था।[9] मीनाकारी जयपुर के महाराजा मानसिंह प्रथम (1589–1614) लाहौर से अपने साथ लाये।[10]

मीनाकारी के प्राचीनतम उदाहरण में सूसा में बहुरंगे तथा मीने के काम किये पात्र 7वीं शती ई. पू. में बने जिन पर चित्रकारी नहीं की जाती थी [11] तथा 12वीं शती. के अन्त के पात्रों पर मीनाकारी के उदाहरण – रै,काशान व सावा में मिले है जिन पर मीनाकारी की गई है।[12] इस कला का पूर्ण विकास विजाटाइन में हुआ व समुचे यूरोप में प्रसार हुआ।[13]

प्राचीन समय में कुछ मीनाकार पंजाब से आकर जयपुर में बस गये जिनमें हरीसिंह, अमरसिंह, किशनसिंह,गोभासिंह, श्यामसिंह, घीसासिंह है। वर्तमान में दुर्गासिंह, कुदरतसिंह, राजकुमार सांकेत, दीपक सांकेत, जसंवन्त कुमार, कैलाश सोनी, कमल कुमार, मनीष सोनी, सन्तोषसिंह, इन्द्रसिंह आदि हस्तकलाकारों ने इस कला को प्रगति के शिखर तक पहुंचाया है व आज भी इस कला साधना में लीन ये कलाकार अपना सराहनीय योगदान दे रहे है।

मीनाकारी का कार्य पुरे समूह में अनेक कलाकारो द्वारा किया जाता है। आभूषण पर तरज की टिपाई चितेरा करता है। मीनाकार या सुनार भी करते है। टिपाई की रेखाओं के बीच–बीच में धातु पर औजारों द्वारा गहराई करली जाती है तो वह लकीरों में बज्ब होकर बैठ जाता है तथा पारदर्शक रंग में लकीरों के कारण छाया प्रकाश का प्रभाव भी झलकने लगता है मीनाकार रंगो को उनकी आग की तपत सहन करने की शक्ति के अनुसार ही क्रम से लगाता है, अर्थात् अधिक कड़ी या तपत अधिक सहन करने वाले रंगो को पहले लगाया जाता है। जल्दी पिघलने वाले नर्म रंगो को पीछे लगाया जाता है रंग कांच व चपड़ी दो प्रकार के होते है। कांच के रंग जो पत्थर के टुकड़ो को आवृति में प्राप्त होता है को खरल में पीसकर पानी के साथ कलम द्वारा वांछित स्थलों में लगाया जाता है। रंग तपाने से पिघलकर तरल हो जाते है। रंग जब समानता में आ जाते है तो कारीगर उसकी कुरणु से पालिश करता है इस प्रकार रंग पारदर्शक और उज्जवल हो जाते है।[14]

अतः हम कह सकते है कि मीनाकारी का भी अपना एक व्याकरण और शास्त्र होता है। मीनाकारी सीखने के लिए सबसे पहले फूल–पत्ती की लिखाई सिखाई जाती है इसके बाद जिला, फूल–पत्ती और सफेदी में हाथ साधने के बाद रंग भरने का काम सिखाया जाता है। मीना भराई में लिखाई की साधना करने की जरूरत नहीं होती। जिला भरने का काम सफेदी को छोड़कर सबमें किया जाता है। जिला से चमक आती है। यदि जिला नहीं भरा जाये तो मीना में चमक नहीं आयेगी और रंगो में अन्दर से रोशनी नहीं उभरेगी। जिला भरने का काम सलाइयों से किया जाता है जो फौलाद की बनी होती है। मीनाकारी करने के लिए सबसे पहले घड़ियों द्वारा बनाये गये जेवर में चपड़ी भरने का काम किया जाता है। चपड़ी जेवर को गर्म करके भरी जाती है। गहने को लकड़ी की हुण्डी में चपड़ी से चिपकाया जाता है। सर्वोत्तम किस्म के लोहे से बनी और छायादार सलाइयों से गहनों पर डिजाइन उत्कीर्ण किया जाता है। कार्य के अनुसार सलाइयों की किस्म भी अलग–अलग होती है जैसे जिला की सलाई, खत की सलाई और लिखने की सलाई। जब गहने पर पूरा डिजाइन बन जाता है तब गहनों को हल्का गर्म करके उनमें भरी गयी चपड़ी निकाल ली जाती है और गंधक के तेजाब से उजाल किया जाता है फिर तकुवे से विभिन्न प्रकार के रंगो की भराई की जाती है। मीने के रंग गहरे, पारदर्शी, अपादर्शी, कांच की तरह होते है। इन्हें लोहे की कड़छी में मुगर से बारीक पीसा जाता है। इन्हें पानी में रखा जाता है और थोड़ा सा गंधक या तेजाब डालकर पानी से धुलाई कर ली जाती है। [15]

प्राचीन काल में राजा–महाराजाओं के समय में प्रायः माणक को पीसकर मीनाकारी करते थे।

मीनाकारी की किस्में

मीनाकारी की प्रमुख रूप से चार किस्में प्रचलित है : सफेद चलवा, लाल जमीन, बूंदतिला या शबनम या छटवां और चौथी तैयारी। इनमें सफेद चलवा सबसे कठिन और तैयारी सबसे आसान है।

सफेदचलवा में हर डिजाइन के चारों ओर बाल की तरह बारीक लाईन का बॉर्डर चलता है तथा इसकी मोटाई भी तकरीबन एक सी ही होती है। डिजाइन चाहे किसी भी तरह के फूल–पत्ती, पशु पक्षी या आकृति की बनायी जाये सबके चारो ओर एक सफेद रेखा होगी।

मीनाकारी की दूसरी किस्म है–लाल जमीन। इसमें धरातल का रंग लाल मीना का होता है। इसमें नीला एवं हरा धरातल भी भरा जाता है, किन्तु फूल पत्तियों की डंडियां सुनहरी सोने की ही छोड़ी जाती है।

सोने की धरातल वाली डिजाइन वाली किस्म को बूंद तिला कहते है। शबनम और छंटवा इसी किस्म के दूसरे नाम है छंटवा में पत्ते सुनहरी होते है तथा इसमें सुनहरी काम भी होता है। मीनाकारी की तैयारी किस्म में प्रत्येक डिजाइन के चारों और सफेद मीना की भराई की जाती है, किन्तु इसमें सफेद छंटवा की तरह सफेद बॉर्डर बारीक और एकसार नहीं होता।[16]

लाल मीना के लिए थोड़ा सोना, थोड़ा तांबा व सिलिका मिलाकर भट्टियों में गर्म करना होता है। हरा मीना के लिए सिलिका में जिंक मिलाने की जरूरत होती है। जबकि सिलिका में सिर्फ तांबा मिलाने से नीला मीना बनाया जाता है। मीना के रंगों में नियोडियम व केडीयम धातुऐं भी प्रयोग में लायी जाती है। इनके अतिरिक्त विभिन्न खनिजों से विभिन्न प्रकार के रंग बनाये जाते है। जैसे पोटाश की क्रोमेट से पीला, मैगनीज कार्बोनेट से वायलेट कोबाल्ट ऑक्साइड से ब्लू, तांबे ऑक्साइड से ग्रीन, लाल आक्साइड से ब्राउन इत्यादि रंग बनते है। परम्परागत रूप से सोने पर मीनाकारी के लिए काले, नीले, गहरे पीले, नारंगी रंगों का प्रयोग होता है।

मीना का कार्य विभिन्न प्रकार के उपकरणों से किया जाता है। जैसे सलाई, मोर्टार और मूसल, भट्ठा, धातु प्लेट, कलाम, Taqva, Forcept (संदश), Small Scrubbing brush, takala (रंग लगाने के लिए सूई जैसा उपकरण), चौरसाई Sanding के लिए पत्थर एगेट व पीतल डाई आदि।[17]

आज यह कला न केवल देश में ही अपितु विदेशों में भी अपना प्रभुत्व जमा चुकी है। आये दिन प्रशिक्षण संस्थानों में भी इस कला का प्रशिक्षण दिया जाने लगा है। जिसकी नींव महाराजा रामसिंह ने रखी थी। इन्होनें अपने शासनकाल में सिटी पैलेस के बादल महल में ''हुनरी मदरसा'' खोल दिया था। तत्पश्चात पंडित श्योदीन की हवेली में ''अजायबघर'' नामक कला स्कूल खोला गया जिसे आर्ट स्कूल के नाम से जाना जाता है।[18] यहां चित्रकला, मीनाकारी, मूर्तिकला आदि के कलाकार विशेषज्ञों को रखा, जिन्होनें

इच्छुक होनहार विद्यार्थियों को शिक्षा दी। इसी संस्था में मीनाकारी शिक्षकों के रूप में सरदार गोभासिंह, हजारीसिंह, रावतसिंह व करतारसिंह को भी शिक्षक के रूप में रखा गया।

मीनाकारी की यह कला परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी पूर्वज कलाकारी द्वारा अपने वंश को हस्तानान्त्रित की जा रही है। जिसे नये कलाकार विभिन्न ऊंचाईयों पर ले गये जो आये दिन विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित होते है तथा अपने हाथ के हुनर के विस्तार हेतु देश विदेश की यात्राऐं कर भारत देश का नाम रोशन करते है।

हस्तकलाओं को प्रोत्साहन :– आधुनिकीकरण ने हालांकि हस्तकलाओं को खासा नुकसान पहुंचाया है। हाथों का काम जब से मशीन ने प्रारम्भ किया है तब से हस्तकलाकारों की रोजी–रोटी पर भी प्रतिकूल असर पड़ा है। ऐसे में यह जरूरी है कि हस्तकलाओं के विकास एवं प्रोत्साहन की दिशा में सभी स्तरों पर प्रभावी प्रयास किये जायें।[19]

राजस्थान में हस्तशिल्पियों को प्रोत्साहन के लिए वर्ष 1983 से सिद्धहस्त शिल्पियों को पुरस्कृत करने की योजना भी शुरू की गयी तथा 1998 की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत हस्तशिल्प उद्योग पर विशेष बल दिया गया है, क्योंकि इस कला उद्योग के द्वारा राज्य के आर्थिक विकास की क्षेत्रीय असमानताओं को दूर किया जा सकेगा एवं स्थानीय लोगों को उनके ही क्षेत्र में रोजगार उपलब्ध करवाकर उन्हें बाहर जाने से रोकना सम्भव होगा। [20]

जयपुर में जवाहर कला केन्द्र में प्रतिवर्ष हस्तशिल्प मेला लगाया जाता है तो अन्य स्थानों पर भी इस प्रकार के मेले इस उद्देश्य से लगाये जाते है कि लोगों को हस्तशिल्प उत्पाद क्रय करने के लिए प्रेरित किया जा सके तथा हस्तशिल्पियों को भी संरक्षण मिल सके। हस्तशिल्प व हस्तशिल्पी हमारी अमूल्य धरोहर हैं आज हस्तशिल्प उद्योग का दर्जा प्राप्त कर चुके हैं। यदि इन्हें सर्वोत्तम माना जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। यहाँ के हस्तशिल्पियों ने बड़ी दक्षता के साथ मूल रूप को कायम रखते हुए नये आयाम दिये हैं। इस गौरवशाली परमपरा के निर्वाह हेतु अब उन हस्तशिल्पियों के प्रति आभारी हैं, जो आज तक इस कलात्मक संस्कृति की चेतना को अनुप्राणित करते आ रहे हैं।

हस्तशिल्प में वैयक्तिक दक्षता का तत्व तो है ही साथ–साथ इसमें परम्परागत ज्ञान का भी तत्व है जिसे बहुधा नजरअंदाज कर दिया जाता है। बौद्धिक सम्पदा को संरक्षित करने और बौद्धिक सम्पदा को अधिकार प्रदान करने का विश्वव्यापार संगठन में विधिक समझौता किया गया है। परन्तु कई क्षेत्रों के परम्परागत ज्ञान को भी सुरक्षित करने का प्रयास किया गया है। परन्तु अब तक शिल्प को संरक्षण प्रदान करने, उसके परम्परागत स्वरूप को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रयासों की कमी है। हस्तशिल्प सहित अन्य सभी प्रकार के शिल्प को बहुधा लोक साहित्य में सम्मिलित किया जाता है। 'विश्व बौद्धिक संपदा संगठन' के अनुसार लोक साहित्य में हस्तशिल्प और अन्य सभी मूर्त साहित्यिक अभिव्यक्ति सम्मिलित हैं। 'विश्व बौद्धिक संपदा संगठन' के अनुसार मूर्त साहित्यिक अभिव्यक्तियों से आशय चित्रकारी, रेखाचित्र, नक्काशी, प्रतिमा बनाना, लकड़ी का काम, धातुकर्म, आभूषण बनाना, टोकरी बनाना, वस्त्र एवं परिधान, संगीत उपकरण, इमारत निर्माण के विविध रूप सम्मिलित हैं। परन्तु इनमें भी अनिवार्यता का पक्ष नही है। विश्व व्यापार संगठन जनवरी 1995 से प्रभावी हुआ और कई नवीन क्षेत्र इसकी श्रेणी में आ गए। विश्व व्यापार संगठन के व्यापार सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा प्रावधान के अनुसार बौद्धिक संपदा के संरक्षण हेतु बाध्यकारी विधिक प्रावधान किए गए।

सन्दर्भ

1. भल्ला, डॉ लाजपतराय 'सामयिक राजस्थान', पृष्ठ सं. 181
2. नीरज, डॉ. जयसिंह, शर्मा, भगवतीलाल 'राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा' पृष्ठ सं. 213
3. व्यास, डॉ. राजेश कुमार, 'सांस्कृतिक पर्यटन' पृष्ठ सं. 185
4. राठौड़, डॉ. अमरसिंह, 'राजस्थान सुजस' सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग राजस्थान पृष्ठ सं. 896
5. व्यास, डॉ. राजेश कुमार, वही पृष्ठ सं. 187
6. भल्ला, डॉ लाजपतराय वही, पृष्ठ सं. 181
7. मागो, प्राणनाथ, 'भारत की समकालीन कला' पृष्ठ सं. 4
8. साखलकर, रवि., 'कला कोश' पृष्ठ सं. 58
9. नीरज, डॉ. जयसिंह, शर्मा, भगवतीलाल, वही पृष्ठ सं. 213
10. जैन, डॉ. हुकुमचन्द, माली, नारायण, 'राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एन साइक्लोपीडिया' पृष्ठ सं. 205
11. अशोक, 'ईरान की चित्रकला' पृष्ठ सं. 8
12. प्रताप, डॉ. रीता, 'सुदूरपूर्व की कला' पृष्ठ सं. 298
13. साखलकर, र.वि., वही पृष्ठ सं. 58
14. जैन, डॉ. हुकुमचन्द, माली, नारायण, वही पृष्ठ सं. 239
15. राठौड़, डॉ. अमरसिंह, 'राजस्थान सुजस' सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग राजस्थान पृष्ठ सं. 893
16. राठौड़, डॉ. अमरसिंह, वही सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग राजस्थान पृष्ठ सं. 893
17. दीपक साकेत, संतोषसिंह, इन्दरसिंह – साक्षात्कार
18. माथुर कमलेश, 'हस्तशिल्प कला के विविध आयाम' पृष्ठ सं. 118
19. व्यास, डॉ. राजेश कुमार, वही पृष्ठ सं. 193
20. भल्ला, डॉ लाजपतराय वही पृष्ठ सं. 181